ॐ

भद्रबाहुचरित्र

वारि हंस इव क्षीरं सारं गृह्णाति सज्जनः ।
यथाश्रुतं यथारुच्यं शोच्यानां हि कृतिर्मता ॥
(श्रीवादीभसिंह)

अनुवादक—
श्री उदयलाल जैन
काशलीवाल

प्रकाशक
मैनेजर, जैन भारती भवन
बनारस सिटी

न्योछावर ॥=)

Printed by Gauri Shankar Lal, at G. P. Press, Benares.
PUBLISHED BY BADRI PRASAD JAIN, BENARES.

ॐ

भद्रबाहुचरित्र

वारि हंस इव क्षीरं सारं गृह्णाति सज्जनः ।
यथाश्रुतं यथारुच्यं शोच्यानां हि कृतिर्मता ॥
(श्रीवादीभसिंह)

बड़नगर निवासी
श्री उदयलाल काशलीवालके द्वारा
अनुवादित

प्रकाशक
मैनेजर, जैन भारती भवन
बनारस सिटी

प्रथम संस्करण	श्री वीर-निर्वाण सं.	शुल्क
१०००	२४३७	

रजिष्टर्ड

सूचना.

जिस पुस्तक पर हमारी मुहर न होगी वह चोरी की समझी जायगी. इस वास्ते खरीदारों को चाहिये कि लेते समय हमारे कार्यालय की मुहर छपा लेवें ।

प्रस्तावना ।

पाठक महाशय !

जिस ग्रन्थकी प्रस्तावना लिखनेका हम आरंभ करते हैं वह वास्तवमें बहुत महत्त्वका है। ग्रन्थकर्त्ताने इस ग्रन्थका संकलन कर जैन जातिका बड़ा भारी उपकार किया है। इस ग्रन्थके निर्माताका नाम है **रत्ननन्दी** । आपके विषयमें बहुत कुछ लिखनेकी हमारी उत्कण्ठा थी परन्तु जैन समाज ऐतिहासिक विषयोंकी खोज करनेमें संसारमें सबसे पीछा पछड़ा हुआ है और यही कारण है कि आज कोई किसी जैनाचार्यकी जीवनी लिखना चाहे तो पहले तो उसे सामग्री ही नहीं मिलेगी। यदि विशेष परिश्रमसे कुछ भाग कहीं पर मिल भी गया तो वह उतना थोड़ा रहता है जिससे पाठकोंकी इच्छा पूरी नहीं होसकती। इसका कारण यदि हम यह कहें कि "जैनियोंमें शिक्षाका प्रचार बहुत कम होगया है और इसीसे कोई किसी विषयकी खोजमें नहीं लगता है" तो कोई अनुचित नहीं होगा। क्योंकि ऐतिहासीय बातोंका शिक्षासे बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है। आज संसारमें बुद्धका नाम इतना प्रसिद्ध है कि बच्चा २ उन्हें जानने लगा है। परन्तु जैन धर्म इतने महत्वका होकर भी उसे बहुत कम लोग जानते हैं। इसका कारण क्या है? और कुछ लोग जानते भी हैं तो उनमें कितने ऐसे हैं जो जैनमतको स्वतंत्र मत न समझ कर बौद्धादिकी शाखा विशेष समझते हैं। इसे हम जैनियोंकी भूल छोड़कर दूसरोंकी गल्ती नहीं कह सकते। क्योंकि—जिस प्रकार बौद्धोंका इतिहास प्रसिद्ध होनेसे उन्हें सब जानने लग गये यदि उसी प्रकार जैनियोंका इतिहास आज यदि संसारमें प्रचलित होता तो क्या यह संभवथा कि जैनी लोग योंही संसारके किसी कोनेमें पड़े २ सड़ा करते? हम इस अन्ध श्रद्धा पर विश्वास नहीं कर सकते। क्या आज जैनियोंमें विद्वान, महात्मा तथा परोपकारी पुरुषों-की किसी तरह कमी है जो उनके प्रसिद्ध होनेमें कोई प्रतिबन्ध हो? नहीं।

हां यदि कमी है तो उन प्राचीन महर्षियोंके वास्तविक ऐतिहासिक वृत्तान्त की। यदि जैन समाज इस बात पर लक्ष देगा और इस विषयकी खोजमें जी जानसे लगेगा तो कोई आश्चर्य नहीं कि वह फिर भी अपने पूर्वजोंका उज्वल सुयशस्थम्भ संसारके एक छोरसे लेकर दूसरे छोरतक गाढ़ दे। और एकवक्त सारे संसारमें जैनधर्मका वास्तविक महत्व प्रगट कर दे।

क्योंकि—

उपाये सत्युपयेस्य प्राप्तिः का प्रतिबन्धता।
पातालस्थं जलं यन्त्रात्करस्थं क्रियते यतः॥

प्राप्त होनेवाली वस्तुके लिये उपाय किया जाय तो उसमें कोई प्रतिरोधक नहीं हो सकता। क्योंकि-यंत्रके द्वारा तो पातालसे भी जल निकाल लिया जाता है।

हमारे ग्रन्थकारका भी इतिहास गाढान्ध कारमें पड़ा हुआ है और न हमारे पास सामग्रीही है जो उसे अन्धकारसे निकाल कर उजालेमें ला सकें। अस्तु, ग्रन्थकारने ग्रन्थके अन्तिम श्लोकमें कुछ अपना परिचय दिया है उसीपर कुछ श्रम करके देखते हैं कि हम कहां तक सफल मनोरथ होंगे?

वादीभेन्द्रमदप्रमर्दनहरेः शीलामृताम्भोनिधेः
शिष्यं श्रीमदनन्तकीर्त्तिगणिनः सत्कीर्त्तिकान्ताजुषः।
स्मृत्वा श्रीललितादिकीर्त्तिमुनिपं शिक्षागुरुं सद्गुणं
चक्रे चारु चरित्रमेतदनघं रत्नादिनन्दी मुनिः॥

भाव यह है कि—परवादीरूप गजराजके मदका नाश करने वाले, शीलामृतके समुद्र और उज्वल कीर्त्ति—कान्तासे विराजित श्रीअनन्तकीर्त्ति महाराजके शिष्य और अपने विद्या गुरु श्रीललितकीर्त्ति मुनिराजका हृदयमें स्मरण कर रत्ननन्दी मुनिने यह निर्दोष चरित्र बनाया है। यही ग्रन्थकारके इतिहासकी नींव है। अथवा यों कहिये कि—पहली सीढ़ी है। पाठक स्वयं विचारें कि—यह नींव कहां तक काम आ सकेगी? खैर! इस श्लोकसे यह तो मालूम होगया कि—रत्ननन्दी

ललितकीर्त्ति मुनिके शिष्य हैं। और ललितकीर्त्ति श्रीअनन्तकीर्त्ति आचार्यके शिष्य हैं। इन महानुभावोंका संसारमें कब अवतार हुआ है यह निश्चय करना तो जरा कठिन है। परन्तु भद्रबाहु चरित्रमें श्रीरत्ननन्दीने एक जगहं लिखा है कि—

मृते विक्रमभूपाले सप्तविंशातिसंयुते ।
दशपञ्चशतेऽब्दानामतीते शृणुतापरम् ॥
लुङ्कामतमभूदेकं लोपकं धर्मकर्मणः ।
देशेऽत्र गौर्जरे ख्याते विद्वत्ताजितानिर्जरे ॥
अणहिल्लपत्तने रम्ये प्राग्वाटकुलजोऽभवत् ।
लुङ्काभिधो महामानी श्वेतांशुकमताश्रयी ॥
दुष्टात्मा दुष्टभावेन कुपितः पापमण्डितः ।
तीव्रमिथ्यात्वपाकेन लुङ्कामतमकल्पयत् ॥

अर्थात्—महाराज विक्रमकी मृत्युके बाद १५२७ वर्ष बीत जाने पर गुजरात देशके अणाहिल नगरमें कुलुम्बी वंशीय एक महामानी लुंका नामक श्वेताम्बरी हुआ है। उसी दुष्टने तीव्र मिथ्यात्वके उदसे लुंकामत (ढूंढियामत) का प्रादुर्भाव किया। यह मत प्रतिमाओं को नहीं मानता है।

ग्रन्थकारके इस लेखसे यह सिद्ध होता है कि—विक्रम सं० १५२७ के बाद वे हुये हैं। क्योंकि तभी तो उन्होंने अपने ग्रन्थमें ढूंढियोंका उल्लेख किया है। परन्तु यह खुलासा नहीं होता कि उनके अवतारका निश्चित समय क्या है? सुदर्शन चरित्रके रचयिता एक जगहं रत्नकीर्त्तिका उल्लेख करते हैं—

मूलसङ्घाग्रणीर्नित्यं रत्नकीर्त्तिगुरुर्महान् ।
रत्नत्रयपवित्रात्मा पायान्मां चरणाश्रितम् ॥

यद्यपि भद्रबाहु चरित्रके रचयिताने अपना नाम रत्ननन्दी लिखा है परन्तु आश्चर्य नहीं कि उन्हें उनसे पीछेके मुनियोंने रत्नकीर्त्ति नामसे भी लिखे हों। क्योंकि रत्ननन्दी और रत्नकीर्तिके समयमें विशेष

अन्तर नहीं दीखता। इससे भी यही प्रतीत होता है कि रत्ननन्दीको ही सुदर्शन—चरित्रके रचयिता विद्यानन्दीने रत्नकीर्त्ति लिखा है। ये विद्यानन्दी भट्टारक हैं। इनके गुरु का नाम है देवेन्द्रकीर्त्ति जैसा कि सुदर्शन चरित्रके इस लेखसे जाना जाता है—

जीवाजीवादितत्वानां समुद्योतदिवाकरम्।
वन्दे देवेन्द्रकीर्त्तिं च सूरिवर्यं दयानिधिम्॥
मद्गुरुर्योविशेषेण दीक्षालक्ष्मीप्रसादकृत्।
तमहं भक्तितो वन्दे विद्यानन्दी सुसेवकः॥

भावार्थ—जीवाऽजीवादि तत्वोंके प्रकाश करनेमें सूर्यकी उपमा धारण करने वाले और दयासागर श्रीदेवेन्द्रकीर्त्ति आचार्यके लिये मैं अभिवन्दन करता हूं। जो विशेषतया मेरे गुरु हैं। इन्हींके द्वारा मुझे दीक्षा मिली है।

देवेन्द्रकीर्त्ति भट्टारक विक्रम सम्वत १६६२ में सागानेरके पट्टपर नियोजित हुये थे। इनके बनाये हुये बहुत से कथाकोषादि ग्रन्थ हैं। इससे यह सिद्ध तो ठीक तरह होगया कि सुदर्शन--चरित्रके कर्त्ता विद्यानन्दी भी विक्रम सं० १६६२ के अनुमानमें हुये हैं। यह हम ऊपर लिख आये हैं कि-रत्नकीर्त्ति और रत्ननन्दी एकही होने चाहिये। क्योंकि भद्रबाहुचरित्र दोनोंके बनाये हुये लिखे हैं। परन्तु रत्ननन्दीके भद्रबाहु-चरित्रको छोड़ कर रत्नकीर्त्तिका भद्रबाहुचरित्र अभी तक देखनेमें नहीं आता और न इन दोनोंके समयमें विशेष फर्क है। भद्रबाहुचरित्रके अनुसार रत्ननन्दीका समय वि. १५२७ के ऊपर जचता है और विद्यानन्दीके सुदर्शनचरित्रके अनुसार रत्नकीर्त्तिका समय भी १६६२ के भीतर होना चाहिये। वैसे अन्तर है १३५ वर्षका परन्तु विचार करनेसे इतना अन्तर नहीं रहता है। भद्रबाहुचरित्रमें जो रत्ननन्दीने ढूंढियोंके मतका प्रादुर्भाव वि. १५२७ में हुआ लिखा है इससे रत्ननन्दी-का ढूंढियोंसे पीछे होना तो सहज सिद्ध है। परन्तु वह कितना पीछे यह ठीक निश्चय नहीं किया जा सकता। यदि अनुमानसे यह कहें कि उस समय ढूंढियोंको पैदा हुये सौ सवासौ वर्ष होजाने चाहियें तो वि.

१६२५ के आस पास उनका होना जाना जाता है यह बात भद्रबाहुचरित्रमें ढूंढियोंकी उत्पत्तिसे जानी जाती है।

दूसरे भद्रबाहु-चारित्रके बनानेवाले रत्ननन्दी तथा रत्नकीर्त्ति के एक होनेमें यह भी एक प्रमाण मिलता है कि जहां परिच्छेद पूरा होता है वहां-रत्ननन्दी तथा रत्नकीर्त्ति इन दोनोंका नाम पाया जाता है। इस लिये यही निश्चित होता है कि भद्रबाहु-चारित्रके बनाने वाले दोनों महानुभाव एकही हैं। वैसे रत्नकीर्त्ति और भी हुये हैं। पाठक यदि इस विषयमें परिचित हों तो अनुग्रह करैं पुनरावृत्तिमें ठीक कर दिया जावैगा।

रत्ननन्दी किस कुलमें तथा किस देशमें हुये हैं यह ठीक२ नहीं जाना जा सकता। जिससे कि हम उनके विषयमें कुछ और विशेष लिख सकें। और न हमारे पास विशेष साधन ही है।

रत्ननन्दीने भद्रबाहुचरित्रमें एक जगहँ यह लिखा है कि—

श्वेतांशुकमतोद्भूतमूढान् ज्ञापयितुं जनान्।
व्यरीरचमिमं ग्रन्थं न स्वपाण्डित्यगर्वतः॥

इससे यह जाना जाता है कि उनके भद्रबाहुचरित्रके लिखनेका असली अभिप्राय श्वेताम्बर मतकी उत्पति तथा उसकी जिन शासनसे बहिर्भूतता बताना था। हम भी कुछ प्रकर्णानुसार श्वेताम्बर मतके बाबत विचार करेंगे—पाठक जरा पक्षपात रहित तात्विक दृष्टिसे दोनों मतकी तुलना करैं कि प्राचीन मत कौन है? और कौन उपादेय तथा जीवोंके सुखका साधन है?

श्वेताम्बर और दिगम्बरोंमें जो मत भेद है वह तो रहै। सबसे पहले हम अपने लेखमें यह बात सिद्ध करेंगे कि दोनोंमें प्राचीन मत कोन है? और किसका पीछेसे प्राहुर्भाव हुआ है? इस विषयका पर्यालोचन करनेसे दोनों मत वाले दोनोंकी उत्पत्ति अपने २ से कहते हैं। इसलिये हम सबसे पहले दोनोंकी ओरसे एक २ की उत्पत्तिका उपक्रम दोनों सम्प्रदायके ग्रन्थोंके अनुसार लिखे देते है—

श्वेताम्बर लोग कहते हैं कि—

दिगम्बरस्तावत्—श्रीवीरनिर्वाणान्नवोत्तरषट्शतवर्षातिक्रमे शिवभूत्यपरनाम्नः सहस्रमल्लतः सञ्जातः—

यथा—छव्वाससयाइं नवुत्तराइं तईयासिद्धिं गयस्स वीरस्स ।

तो बोडिआण दिट्ठी रहवीरपुरे समुप्पण्णा ॥ (प्रवचनपरीक्षा)

भावार्थ—श्रीवीरनाथके मुक्ति जानेके ६३९ वर्ष बाद रथवीर पुरमें शिवभूति (सहस्रमल्ल) से दिगम्बरोंकी उत्पत्ति हुई है । इसका हेतु यों कहा जाता है—

"रहवीरेत्याद्यार्यात्रयाणायमर्थः—

तात्पर्य यह है कि–रथवीर पुरमें एक शिवभूति रहता था। उसकी स्त्री अपनी सासुके साथ लड़ा करती थी । उसका कहना था कि—तुम्हारा पुत्र रात्रिके समय बाहर २ बजे सोनेके लिये आता है सो मैं कब तक जगा करूं । शिवभूतिकी माताने इसके उत्तरमें कहा कि—आज तूं सोजा और मैं जागती हूं । बाद यही हुआ भी । शिवभूति सदाके अनुसार आज भी उसी समय घर आये और कवांड़ खोलनेके लिये कहा तो भीतरसे उत्तर मिला कि–इस समय जहां दरवाजा खुला हो वहीं पर चले जाओ * । शिवभूति माताकी भर्त्सनासे चल दिये । घूमते हुये उन्हें एक साधुओंका उपाश्रय खुला हुआ दीख पड़ा । शिवभूतिने भीतर जाकर साधुओंसे प्रवृजाकी अभ्यर्थना की । परन्तु साधुओंको उनकी अभ्यर्थना स्वीकृत नहीं हुई * । तब निरुपाय होकर वे स्वयं प्रवृजित हो गये । फिर साधुओंकी भी कृपा होगई सो उन्होंने शिवभूतिको अपने शामिल कर लिया । बाद साधुलोग वहांसे बिहार करगये ।

---

* क्यों पाठकों ! आपने भी यह बात कभी सुनी है कि-जरासे स्त्रीके कहनेमें आकर माता अपने हृदयके टुकड़ेको अपनेसे जुदा कर सकती है ? जिसके विषयमें यहां तक कहावत प्रसिद्ध है कि "पुत्र चाहे कुपुत्र भले ही होजाय परन्तु माता कभी कुमाता नहीं होती " तो यह कल्पना कहां तक ठीक है ? बुद्धिमानोंको विचारना चाहिये ।

* शिवभूतिको उस समय दीक्षा क्यों नहीं दी गई ? और जब इन्कार ही था तो फिर क्यों दीगई ? कुछ विशेष हेतु होना चाहिये ।

कुछ कालके बाद फिर भी उसी नगरमें उन सब साधुओंका आना हो गया। उस समय वहांके राजाने शिवभूतिको एक रत्नकम्बल दिया। उसे देखकर साधुओंने शिवभूतिसे यह कह कर कि–साधुओंको रत्न-कम्बल लेना उचित नहीं है छीन लिया। और उसके टुकड़े २ करके रजो हरणादिके काममें लाने लगे। साधुओंके ऐसे वर्त्तावसे शिव-भूतिको बहुत दुःख पहुंचा।

किसी समय उस संघके आचार्य जिनकल्प साधुओंका स्वरूप कह रहे थे तब शिवभूतिने यह जाननेकी इच्छाकी कि–जब जिनकल्प निष्प-रिग्रह होता है तो आपलोगोंने यह आडम्बर किस लिय स्वीकार किया? वास्तविक मार्ग क्यों नहीं अङ्गीकार करते हैं? इसके उत्तरमें गुरु महाराजने कहा कि—इस विषम कलिकालमें जिनकल्प कठिन होनेसे धारण नहीं किया जा सकता। जम्बूस्वामीके मोक्ष जाने बाद जिनकल्प नाम शेष रह गया है। शिवभूतिने सुनकर उत्तरमें कहा कि–देखिये तो मैं इसे ही धारण करके बताता हूं। इसके बाद गुरुने भी उसे बहुत समझाया परन्तु शिवभूतिने एक न सुनी और जिनकल्प धारण करही तो लिया।" यही श्वेतांबरियोंके शास्त्रोंमें दिगम्बरियोंकी उत्पात्तिका हेतु है। इसकी समीक्षा तो हम आगे चलकर करेंगे अब जरा दिगम्बरोंका भी कथन सुन लीजिये—

वामदेव (जो वि. की दशमी शताब्दिमें हुये हैं) उन्होंने भावसंग्रहमें लिखा है कि—

भाव यह है—विक्रमराजाकी मृत्युके १३६ वर्ष बाद जिनचन्द्रके द्वारा श्वेताम्बर मतका संसारमें सभाविर्भाव हुआ। कारण यह है कि उज्जायिनीमें श्रीभद्रबाहु मुनिराजका संघ आया। भद्रबाहु मुनि अष्टाङ्ग निमित्त (ज्योतिषशास्त्र) के बड़े भारी विद्वान थे। निमित्त ज्ञानसे जानकर उन्होंने सब मुनियोंसे कहा कि–देखो! यहां बारह वर्षका घोर दुर्भिक्ष पड़ैगा। सब साधु लोग उनके बचनो पर दृढ़ विश्वासकर अपने २ गणके साथ दूसरे देश की ओर चले गये। क्योंकि श्रुतज्ञानीके वचन कभी अलीक नहीं हो सकते। वैसा हुआ भी। सो एक दिन शान्त्याचार्य विहार करते हुये बलभीपुरीमें चले आये और वहीं पर रहने लगे।

उज्जयिनीमें भीषण दुर्भिक्ष पड़ा। वह यहां तक कि भिक्षुक लोग एकका एक उदर फाड़कर भीतरका अन्न निकाल२कर खाने लगे। उससमय साधु लोग वास्तविक मार्गको नहीं रख सके। परन्तु किसी तरह अपना पेट तो भरनाही पड़ता था। इसलिये धीरे २ शिथिल होकर वस्त्र, दंड, भिक्षा-पात्र, कम्बलादि धारण कर लिये। इसी तरह जब कितना काल बीता और सुभिक्ष हुआ तब शान्त्याचार्यने अपने सब संघको बुलाकर कहा कि--अब इस बुरे मार्गको छोड़ो और वास्तविक सुमार्ग अङ्गीकार करो। उस समय जिनचन्द्र शिष्यने कहां कि--हम यह वस्त्रादि रहित मार्ग कभी नहीं स्वीकार कर सकते। और न इस सुखमार्गका परित्याग ही कर सकते हैं। इसलिये आपका इसीमें भला हैं कि—आप चुपसाध जावें। शान्त्याचार्यने फिर भी समझाया कि तुम भले ही इस कुमार्गको धारण करो परन्तु यह मोक्षका साधन नहीं होसकता हां उदर भरनेका वेशक साधन है। शान्त्याचार्यके वचनोंसे जिनचन्द्रको वड़ा क्रोध आया और उसी अवस्थामें उसने अपने गुरुके शिरकी दण्डों २ से खूब अच्छी तरह खबर ली–जिससे उसी समय शान्त्याचार्य शान्त परिणामोसें मर कर व्यन्तर देव हुये। और अपने प्रधान शिष्य जिनचन्द्रको शिक्षा देने लगे। उससे वह डरा सो उनकी शान्तिके लिये उसने आठ अङ्गुल चौड़ी तथा लम्बी एक काठकी पट्टी बनाई और उसमें शान्त्याचार्यका संकल्प कर पूजने लगा सो वह उसी रूपमें आज भी लोकमें जलादिसे पूजा जाता है। अब तो वही पर्युपासन नाम कुलदेव कहलाने लगा। बाद श्वेत वस्त्र धारण कर उसकी पूजन की गई तभीसे लोकमें श्वेताम्बर मत प्रख्यात हुआ। *

---

* हमारे पाठकोंको यह सन्देह होगा कि—भद्रबाहुचरित्रमें तो स्थूलाचार्य मारे गये लिखे हैं और भावसंग्रहमें शान्त्याचार्य सो यह फर्क क्यों ?

मालूम होता है कि—शान्त्याचार्यही का अपर नाम स्थूलाचार्य है। क्योंकि–यह बात तो दोनों ग्रन्थकारने मानी है कि—श्वेताम्बर मतका संचालक जिनचन्द्र हुआ है और उन्होंने दोनोंका उसे शिष्य भी बताया है। दूसरे दर्शनसारमें भी शान्त्याचार्यके शिष्य जिनेचन्द्रके द्वाराही श्वेताम्बर मतकी उत्पत्ति बतलाई गई है और यह ग्रन्थ प्राचीन भी अधिक है। इसलिये हमारी समझमें तो स्थूलाचार्यका ही दूसरा नाम जिनचन्द्र था। ऐसाही जचता है और न ऐसा होना असम्भव ही है।

यही दोनों मतोंके शास्त्रका सिद्धान्त है। इसमें किसका कहना सत्य है तथा कौन पुरातन है यह जरा पर्यालोचनसे आगे चल कर अवगत होगा। दिगम्बरियोंकी उत्पत्ति बाबत श्वेताम्बर लोगोंका कहना है कि ये लोग विक्रमकी २री शताब्दिमें हुये हैं। अस्तु, यदि थोड़ी देरके लिये यही श्रद्धान कर लिया जाव तौभी उसमें यह सन्देह कैसे निराकृत हो सकेगा? श्वेताम्बर भाइयोंके पास अपने ग्रन्थोंके लिखे हुये प्रमाणको छोडकर और ऐसा कौन सुदृढ़ प्रमाण है जिससे सर्व साधारणमें यह विश्वास होजाय कि यथार्थमें दिगम्बर मतका समाविर्भाव विक्रमकी दूसरी शताब्दिमें हुआ है? क्योंकि प्रतिवादीका संशय दूर करनेके लिये ऐसे प्रमाणकी बड़ी भारी जरूरत है। हमने दिगम्बर मतके खण्डनमें श्वेताम्बर सम्प्रदायके आधुनिक विद्वानोंकी बनाई हुई कितनी पुस्तकें देखीं परन्तु आजतक किसी विद्वानने प्रबल प्रमाणके द्वारा यह नहीं खुलासा किया—जैसा श्वेताम्बर शास्त्रोंमें दिगम्बरोंका उल्लेख किया गया है। इसलिये यातो इस विषयको सिद्ध करना चाहिये अन्यथा हरिभद्र सूरिके इन वचनोंका पालन करना चाहिये कि—

पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः॥

केवल कथन मात्रसे निष्पक्षपाती होनेकी डींग मारनेको कोई बुद्धिमान भला नहीं कहता। जैसा कहना वैसा परिपालन भी करना चाहिये। उपदेश केवल दूसरोंके लिये ही नहीं होता किन्तु स्वतः भी उसपर लक्ष्य देना चाहिये।

हम यह बात तो आगे चलकर बतावेंगे कि पुराना मत कौन है? और कौन यथार्थ है? इस समय श्वेताम्बरियोंने जो दिगम्बरियोंकी बाबत कथा लिखी है उसीकी ठीक २ समीक्षा करते हैं—

श्वेताम्बरियोंने यह बात तो अपने आप स्वीकार की है कि शिवभूतिने जिस मतका आदर किया था वह जिनकल्प है। और उसे खास इसी कारणसे ग्रहण किया था कि और साधुलोग जो जिनकल्प छोड़े हुये बैठे थे वह उचित नहीं था। सो उसका प्रचार हो। इससे

दिगम्बरियोंको तो बड़ा भारी लाभ हुआ जो अनायास उनका मत प्राचीन सिद्ध हो गया। अरे! जिनकल्प पहले था तभी तो शिवभूति गुरुके मुखसे उसका कथन सुनकर उसके धारण करनेमें निश्चल प्रतिज्ञ हुआ। इसमें उसने नवीन मत क्या चलाया? जो पुराना था, जिसे तुम लोग उच्छेद हुआ बताते हो वह नवीन तो नहीं है। नवीन उस हालतमें कहा जाता जब कि जिनकल्पको जैनशास्त्रोंमें आदर न मिलता। सो तो तुम भी निर्वाद स्वीकार कर चुके हो। उसमें उस समय तुम्हारा विरोध भी तो यही था न? जो कलियुगमें इसका व्युच्छेद होगया है इसलिये धारण नहीं किया जा सकता। और यही कहकर शिवभूतिको समझाया भी था। यदि तुमने उसे कलियुगके दोष मात्र से हेय समझकर उपेक्षा की तो हम तो यही कहेंगे कि तुम्हारी शक्ति इतनी न थी जो उसे धारण कर सको? अस्तु, परन्तु केवल तुम्हारे धारण न करनेसे मार्ग तो बुरा नहीं कहा जा सकता। भला ऐसा कौन बुद्धिमान होगा जो एक मिथ्यादृष्टिकी निन्दासे पवित्र जैनधर्मको बुरा समझने लगेगा।

कदाचित्कहोकि—शिवभूतिने जो मत धारण किया है वह जिन-कल्प भी नहीं है किन्तु जिनकल्पका केवल नाम मात्र है। वास्तवमें उसे कोई और ही मत कहना चाहिये।

यह कहना भी ठीक नहीं है और न उस ग्रन्थ ही से यह अभि-प्राय निकलता है। वहां तो खुलासा लिखा हुआ है कि—जिनकल्पका व्युच्छेद होजानेसे कलियुगमें वह धारण नहीं किया जा सकता। इस विषयको देखते हुये दिगम्बरियोंका श्वेताम्बरियोंके बाबत जो उल्लेख है वह बहुतही निराबाध तथा सत्य जचता है। बड़ी भारी बात तो यह है कि—जैसा दिगम्बरी लोग श्वेताम्बरियोंकी बाबत लिखते हैं उसी तरह वे भी स्वीकार करते हैं जरा देखिये तो—

संयमो जिनकल्पस्य दुःसाध्योऽयं ततोऽधुना।
व्रतं स्थविरकल्पस्य तस्मादस्माभिराश्रितम्॥

तथा—

दुर्द्धरो मूलमार्गोऽयं न धर्त्तुं शक्यते ततः।

कहिये जैसा दिगम्बरी लोग उनकी उत्पत्तिके बाबत वास्तविक मार्गका छोड़ना बताते हैं श्वेताम्बरी लोग भी तो वही बात कहते हैं कि–जिनकल्प वास्तवमें सत्य है। परन्तु कालकी करालतासे उसका व्युच्छेद होगया है। इसलिये वह अब बहुत ही कठिन है। सो उसे हम लोग धारण नहीं कर सकते। यही पाठ शिवभूतिसे भी कहा गया था न? तो अब पाठक ही विचारें कि कौन मत तो पुरातन है और किसका कहना वास्तवमें सत्पथका अनुशरण करता है? यह बात तो हमने श्वेताम्बरी लोगोंके ग्रन्थोंसे ही बताई है और उन्हींसे दिगम्बर मत पुरातन सिद्ध होता है। जब स्वयं अपने शास्त्रोंमें ही ऐसी कथा है जो स्वयं अपने को बाधित ठहराती है—फिर भी आग्रहसे दूसरोंको बुरा भला कहना भूल है। जरा हमारे श्वेताम्बरी भाई यह बात सिद्ध तो करें कि दिगम्बर मत आधुनिक है? वे और तो चाहे कुछ कहें परन्तु अपने ग्रन्थका किस रीतिसे समाधान करते हैं यही बात हमें देखना है।

दिगम्बर लोग श्वेताम्बारियोंकी बाबत कहते हैं कि यह मत विक्रम सम्बत १३६ में निकला। उसी तरह श्वेताम्बर दिगम्बरियोंके बाबत लिखते हैं कि–वि. सं. १३८ में दिगम्बर मत श्वेताम्बरसे निकला। दोनों मतोंकी कथा भी हम ऊपर उद्धृत कर आये हैं। सार किसके कहनेमें है यह बात बुद्धिमान पाठक कथा पर ही से यद्यपि अच्छी तरह जान सकते हैं और इस हालतमें यदि हम और प्रमाणोंको दिगम्बरियोंकी प्राचीनता सिद्ध करनेमें न दें तौ भी हमारा काम अटका नहीं रहैगा। क्योंकि जो बात खण्डन लिखनेवालोंकी लेखनी ही से ऐसी निकल जावै जिससे खण्डन तो दूर रहै और दूसरोंका मण्डन हो जाय तो उसे छोड़कर ऐसा कौन प्रबल प्रमाण हो सकता है जिससे कुछ उपयोग निकले? श्वेताम्बरी भाई यह न समझें कि इस लेखसे हम और प्रमाण देनेके लिये निर्बल हों। हम अपनी ओर से तो जहां तक हो सकेगा दिगम्बर धर्मके प्राचीन बतानेमें प्रयत्न करेंगे ही। परन्तु पहले पाठकोंको यह तो समझादें कि दिगम्बर धर्म श्वेताम्बरसे प्राचीन है। वह भी श्वेताम्बरके ग्रन्थोंसे! अस्तु, अब हम उन प्रमाणोंको भी उप-

श्रित करते हैं जिनसे जैनियोंका कोई सम्बन्ध नहीं है। और उन्हींसे यह भी सिद्ध करेंगे कि दिगम्बर धर्म पहलेका है।

श्वेताम्बरोंके ग्रन्थोंमें यह लिखा हुआ मिलता है कि दिगम्बर धर्म विक्रमकी दूसरी शताब्दिमें रथवीरपुरसे शिवभूतिके द्वारा निकला है। अस्तु, श्वेताम्बर भाइयोंका इस भूल पर चाहे जैसा अन्ध श्रद्धान हो! परन्तु इतिहासके जानने वाले यह बात कभी स्वीकार नहीं करेंगे। प्राचीन इतिहासके देखने पर यह श्रद्धा नहीं होती कि—इस कथनका पाया कितना गहरा और सुदृढ़ होगा? हम अपने प्राचीनत्वके सिद्ध करनेके पहले यह बतला देना बहुत समुचित समझते हैं कि—दिगम्बर साधु लोग धन वस्त्र आदि कुछ भी परिग्रह अपने पास नहीं रखते है। अर्थात् थोड़े अक्षरोंमें यो कहिये कि वे दिशारूप वस्त्रके धारण करने वाले हैं इसीलिये उन्हें दिगम्बर (नग्न) साधु कहते हैं। जैसा कि—श्रीभगवत्समन्तभद्रने साधुओंका लक्षण अपने रत्नकरण्ड-उपासकाचारमें लिखा है—

> विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः।
> ज्ञानध्यानतपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते॥

यह दिगम्बरियोंके साधुओंका लक्षण है। और श्वेताम्बरियोंके साधु लोग वस्त्र वगेरह रखते हैं। इसलिये वे श्वेताम्बर कहे जाते हैं। अथवा हम यह व्याख्या न भी करें तौभी उनके नाम मात्रसे यह ज्ञात हो जाता है कि वे श्वेत वस्त्रके धारण करने वाले हैं। इससे यह सिद्ध हो गया कि निर्ग्रन्थ साधुओंके उपासक दिगम्बर लोग हैं और श्वेत वस्त्र धारक साधुओंके उपासक श्वेताम्बरी लोग। अब विचार यह करना है कि—दिगम्बर मत जब प्राचीन बताया जाता है तो ऐसे कौन प्रमाण हैं जिनसे सर्व साधारण यह समझ जांय कि दिगम्बर मत वास्तवमें पुरातन है?

हम यह बात ऊपर ही सिद्धकर चुके हैं कि दिगम्बर लोग नग्न साधु तथा नग्न देवके उपासक हैं। तो अब देखिये कि—वराहमिहिर जो

ज्योतिषशास्त्रके अद्वितीय विद्वान हुये हैं * उनके समयका निश्चय करते हैं तो उस विषयमें यह प्रसिद्ध श्लोक मिलता है ।

धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशङ्कु-
वेतालभट्टघटखर्परकालिदासाः ।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां
रत्नानि वैवररुचिर्नव विक्रमस्य ॥

कहनेका आशय यह है कि–श्रीविक्रम महाराजकी सभामें धन्वन्तरि अमरसिंह कालिदास प्रभृति जो नव रत्न गिने जाते थे उनमें वराहमिहिर भी एक रत्न थे । इन्होंने अपने प्रतिष्ठाकाण्डमें एक जगहँ लिखा है कि–

विष्णोर्भागवता मयाश्चा सवितुर्विप्रा विदुर्ब्राह्मणां
मातृणामिति मातृमण्डलविदः शंभोः सभस्मा द्विजः ।
शाक्याः सर्वहिताय शान्तमनसो नग्ना जिनानां विदु-
र्ये यं देवमुपाश्रिताः स्वविधिना ते तस्य कुर्युः क्रियाम् ॥

भाव यह है कि —वैष्णव लोग विष्णुकी प्रतिष्ठा करैं, सूर्योपजीवी लोग सूर्यकी उपासना करैं, विप्र लोग ब्राह्मणकी क्रिया करैं, ब्रह्माणी इन्द्राणी प्रभृति सप्त मातृमण्डलकी उनके जानने वाले अर्चा करैं, बौद्ध लोग बुद्धकी प्रतिष्ठा करैं, नग्न (दिगम्बर साधु) लोग जिन भगवानकी पर्युपासना करैं । थोड़े शब्दोंमें यों कहिये कि जो जिसदेवके उपासक हैं वे अपनी २ विधिसे उसीकी क्रिया करैं ।

अब इतिहासके जानने वाले लोग इस बातका अनुभव करैं कि यह वराहमिहिरका कथन दिगम्बर मतका अस्तित्व महाराज विक्रमके

---

* हमने तो यहां तक किम्बदन्ती सुनी है कि वराहमिहिर और श्रीभद्रबाहु ये दोनों सहोदर थे । यह उक्त कहां तक ठीक है ? सहसा विश्वास नहीं होता । क्योंकि-इस विषय में हमारे पास कोई ऐसा सबल प्रमाण नहीं है जिससे इस किम्बदन्तीको प्रमाणित कर सके । यदि हमारे पाठक इस विषयसे कुछ जानते हों तो सूचित करैं हम उनके बहुत आभारी होंगे ।

समय तकका सिद्ध करता है या नहीं ? यदि करता है तो जो श्वेताम्बरी लोग दिगम्बरी लोगोंकी उत्पत्ति विक्रमकी मृत्युके १३८ वर्ष बाद बतलाते हैं यह कहना सत्य है क्या ? हमें खेद होता है कि श्वेताम्बराचार्योंने इस विषय पर क्यों न लक्ष दिया। वे अपने ही हरिभद्रसूरिके—

पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः॥

इन वचनोंको क्यों भूल गये ? अथवा यों कहिये कि—"अर्थी-दोषं न पश्यति,, जिन्हें अपने ही मतलबसे काम होता है वे दूसरे की ओर क्यों देखने वाले हैं ? क्या वे लोग यह न जानते थे कि यह बात छिपी न रहैगी ? हम कितनी भी क्यों न छिपावें परन्तु कभी न कभी तो उजलेमें आवैगी ही।

यह तो हम ऊपरही लिख आये हैं कि-वराहमिहिर विक्रमके समयमें विद्यमान थे। तो अब यह निश्चय हो गया कि दिगम्बरियोंके बाबत जो श्वेताम्बरियोंकी कल्पना है वह-सर्वथा मिथ्या है। उसका एक अंश भी ऐसा नहीं है जो श्रद्धेय हो। बल्कि दिगम्बरियोंने जो श्वेताम्बरियोंकी बाबत वि. सं. १३९ में उनकी उत्पत्ति लिखी है वह बिल्कुल ठीक है। इसके साक्षी वराहमिहिराचार्य हैं। (जिनका जैनियोंसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है) उनके समयमें श्वेताम्बरियोंकी गन्धतक नहीं थी इसीसे उन्होंने " नग्ना " पद दिया है ।

इस विषयमें कितने श्वेताम्बर लोगोंका कहना है—जो लोग जैन मतसे अपरिचित तथा ग्रामीण होते हैं वे जैन मन्दिर के देखते ही झटसे कह उठते हैं कि—यह नग्नदेवका मन्दिर है। उसी प्रसिद्धि के अनुसार यदि वराहमिहिरने भी ऐसा लिख दिया हो तो क्या आश्चर्य हैं ? परन्तु कहने वालोंकी यह भूल है। वराहमिहिर विक्रमकी सभाके रत्न गिन जाते थे। वे सब शास्त्रोंके जानने वाले थे। इसलिये ऐसे अपरिचित तथा ग्रामीण न थे जो वे शिर पेड़की कल्पना उठा लेते। और यह तो कहो कि उस समय तुम्हारा मत जब विद्यमान था

तौभी उन्होंने तुम्हारे विषयमें न लिखकर दिगम्बरियोंके विषयमें क्यों लिखा ? तुम्हारे कथनानुसार तो दिगम्बर धर्मका उस समय सद्भाव भी न होना चाहिये ? फिर यह गोल माल क्यों हुआ ? इसका उत्तर क्या दे सकते हो ? तुम वराहमिहिरके इन बचनों को होते हुये यह कभी सिद्ध नहीं कर सकते कि दिगम्बर मत विक्रमकी दूसरी शताब्दिमें निकला है। किन्तु इतिहास वेत्ताओंकी दृष्टिमें उल्टे तुम ही निरुत्तर कहे जा सकोगे।

कदाचित्कहो कि—केवल नग्न शब्दके कहने मात्रसे तो दिगम्बर लोगोंका अस्तित्व सिद्ध नहीं होता ? क्योंकि हम भी तो जिन कल्पके उपासक हैं। और जिन कल्प वालोंकी प्रवृत्ति नग्न रूप होती है।

केवल कथन मात्रसे कहना कि—हम जिन कल्पके उपासक हैं और जिन कल्प नग्न होता है इससे कुछ उपयोग नहीं निकल सकता। साथ में स्वरूप भी वैसाही होना चाहिये। और यदि यही था तो शिवभूति क्यों वुरा समझा गया ? अरे ! जब तुम्हारा मतही श्वेताम्बर नाम से प्रसिद्ध है तो उसे नग्न कहना केवल उपहास कराना है। हमतो फिर भी कहेंगे कि—साधुलोग वास्तविक नग्न यदि संसारमें किसी मतके होते हैं तो वे केवल दिगम्बरियोंके। वस्त्रादि से सर्वाङ्ग वेष्टित साधुओंको कोई नग्न नहीं कहेगा ? यदि तुम अपना पक्ष सिद्धकरनेके लिये कहो भी तो यह बड़ा भारी आश्चर्य है ! दूसरे तुम्हारे ग्रन्थोंमें जब यह बात भी पाई जाती है कि "तीर्थंकर देव भी सर्वथा अचेल नहीं होते किन्तु देव दूष्य वस्त्र स्वीकार करते हैं" * तो तुम्हारे साधु नग्न हों यह कैसे माना जाय ? यह बात साधारणसे साधारण मनुष्यसे भी यदि पूछी जाय कि दिगम्बर और श्वेताम्बरियोंके साधुओंमें नग्न साधु कौन है ? तो वह भी दोनोंका स्वरूप देख कर झटसे कह देगा कि दिगम्बरियोंके साधु नग्न होते हैं। इसलिये यह नहीं कहा जा सकता कि वराहमिहिरका बचन विक्रम महाराजके समयमें दिगम्बर धर्मका अस्तित्व सिद्ध

* इस विषयको श्रीआत्मारामजी साधुने अपने निर्माण किये हुये तत्वनिर्णयप्रासादके ५४४ वें पत्रमें स्वीकार किया है। पाठक उस पुस्तकसे देख सकते हैं।

करता है वह ससन्देह है। और श्वेताम्बरी लोग जो विक्रमकी दूसरी शताब्दिमें चला बताते हैं वह बिल्कुल काल्पनिक है।

महाभारतके तीसरे परिच्छेदकी आदिमें दिगम्बरियोंकी बाबत कुछ जिकर आया है। महाभारत वराहमिहिरसे भी बहुत प्राचीन है। इसके बनाने वाले श्रीवेदव्यास महर्षि हैं। जिनके नामको बच्चा २ जानता है। इनके विषयमें यदि विशेष शोध करना चाहो तो किसी सनातन धर्मके विद्वानसे जाकर पूछो वह सब बातें बता सकेगा। वे लिखते हैं कि—

* साधयामस्तावदित्युक्त्वा मातिष्ठतोत्तङ्कस्ते कुण्डले
गृहीत्वा सोपस्यदथ पथि नग्नं क्षपणकमागच्छन्तं
मुहुर्मुहुर्दृश्यमानमदृश्यमानं च ॥

आशय यह है कि—कोई उत्तङ्क नामा विद्यार्थी अपने गुरुकी भार्याके लिये कुण्डल लानेके लिये गया। मार्गमें पौष्यके साथ उसका वार्तालाप हुआ तो किसी हेतुसे उत्तङ्कने उसे चक्षु विहीन होनेका शाप दे दिया। पौष्य भी चुप न रह सका सो उसने बदलेका शाप दे डाला कि—तू भी संतानका सुख न देखेगा। अवसानमें यह कहता हुआ कि अच्छा शापका अभाव हो कुण्डल लकर चल दिया। सो रास्तेमें उसने कुछ दीखते हुये कुछ न दीखते हुये नग्न (दिगम्बर) मुनिको बारं बार देखे।

कहो तो नग्न साधु दिगम्बरियोंके ही थे न ? ये वेदव्यास तो आज कलके साधु नहीं हैं? किन्तु इन्हें हुये तो आज कई हजार वर्ष बीत चुके हैं। इस विषयमें तुम यह भी नहीं कह सकते कि क्या आश्चर्य है जो ये जिनकल्पी ही साधु हों ? क्योंकि उस समय जिन-कल्प विद्यमान था। ब्राह्मणोंके ग्रन्थोंमें जहां कहीं नग्नशब्दसे सम्बन्ध रखने वाला विषय आता है वह केवल दिगम्बर धर्मसे सम्बन्ध रखता है। खैर! वेदव्यासतो प्राचीन हुये हैं उनके समयमें तो तुम्हारा

---

* मुनि आत्मारामजीने भी इस प्रमाणको तत्वनिर्णयप्रासादमें जैनमतकी प्राचीनता दिखलानेके लिये उद्धृत किया है।

नाम निशान भी न था किन्तु जो आचार्य विक्रमकी सातवीं तथा नवमी शताब्दिमें हुये हैं वे भी नग्न शब्दका प्रयोग दिगम्बरियोंके लिये ही करते हैं—

कुसुमाञ्जलिके प्रणेता उदयनाचार्य १६ वें पृष्ठमें लिखेते हैं कि—

निरावरण इति दिगम्बराः

इसी तरह न्यायमञ्जरीके बनाने वाले जयन्त भट्ट १६७ वें पृष्ठमें लिखते हैं कि—

क्रियातु विचित्रा प्रत्यागमं भवतु नाम। भस्मजटा-परिग्रहो वा दण्डकमण्डलुग्रहणं वा रक्तपटधारणं वा दिगम्बरता वाऽलम्ब्यतां कोऽत्र विरोधः

इनके अलावा और भी जितनी जगहँ प्रमाण आते हैं वे 'विवसन' 'दिगम्बर' 'नग्न' इत्यादि शब्दोंमें व्यवहृत किये जाते हैं। वे सब दिगम्बर मतसे सम्बन्ध रखते हैं तो फिर क्यों कर यह माना जाय कि दिगम्बर धर्म आधुनिक है ? उसके आधुनिक कहने वालोंको ऐसे प्रमाण भी देने चाहियें जिन्हें सर्व साधारण मान सकें। केवल भलता ही किसी पर आक्षेप करना सर्वथा अनुचित है। आजका जमाना नवीन ढङ्गके प्रवाहमें वह रहा है। अब लोग यह नहीं चाहते हैं कि बिना किसी प्रबल युक्तिके कोई बात मानली जावै। किन्तु जहां तक होसके उसे युक्ति और प्रयुक्तियोंके द्वारा अच्छी तरह परामर्श करके मानना चाहिये। जब प्रत्येक विषयके लिये यह बात है तो यह तो एक बड़ा भारी विषम विषय है। इसमें तो बहुत ही सुदृढ़ प्रमाण होनें चाहियें। हम यह नहीं कहते कि आप लोग हमारे कहे हुयेको अपने हृदयमें स्थान दें। परन्तु साथ ही इतना अवश्य अनुरोध करेंगे कि—यदि हमारा लिखा हुआ अयुक्त होतो उसे सर्व साधारणमें अयुक्त सिद्ध करो। हमें इसबातसे बड़ी खुशी होगी कि—जिस तरह हमने अपने प्राचीनत्व सिद्ध करनेमें एक तीसरे ही मतके प्रमाणोंको उपस्थित किये हैं उसी तरह तुम भी अपने कहे हुये प्रमाणको सप्रमाण प्रमाणभूत ठहरा दोगे। हम प्रतिज्ञा पूर्वक यह बात लिखते हैं और न ऐसे लिखनेसे हमें किसी

तरहकी विभीषिका है। यदि हमें कोई यह बात सिद्ध करके बतादेंगे कि—दिगम्बर धर्म आधुनिक है। इसका समाविर्भाव विक्रमकी दूसरी शताब्दिमें हुआ है तो हमें दिगम्बर धर्मसे ही कोई प्रयोजन नहीं है किन्तु प्रयोजन है अपने हितसे सो हम फौरन अपने श्रद्धानको दूसरे रूपमें परिणत कर सकते हैं। परन्तु साथही हमारे ऊपर कहे हुये बचनों का भी पूर्ण खयाल रहे। केवल अपने ग्रन्थमात्रके लिखनेसे हम कभी उसे सप्रमाण नहीं समझेंगे। यदि लिखने मात्र पर ही विश्वास कर लिया जाय तो संसारके और २ मतोंने ही क्या विगाड़ा है? जो वे अवहेलनाके पात्र समझें जाय?

इस पर प्रश्न यह होसकता है कि जैसे तुम्हें अपने धर्म पर लिखे-हुयेका विश्वास है वह भी तो लिखा हुआ ही है न? वेशक वह लिखा हुआ है और उस पर हमारा पूर्ण विश्वास भी है। क्योंकि वह हमारी परीक्षामें शुद्ध रत्न जचा है। और यही कारण है कि—दूसरे पर अश्रद्धा है। परन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि हमें कोई यह बात समझादें कि दिगम्बर धर्म आधुनिक और जीवोंका अहित करने वाला है फिर भी उस पर श्रद्धान रहे। अन्यथा हम तो यही अनुरोध करते हैं और करते रहेंगे कि सबसे पहले यह विचारना जरूरी है कि—जीवका वास्तविक हित किस धर्मके द्वारा होसकता है? और कौन धर्म ऐसा है जो संसार में निराबाध है? इस विषयकी गवेषणामें लोगोंको निष्पक्षपाती होना चाहिये और नीचेकी नीति चरितार्थ करना चाहिये—

वारि हंस इव क्षीरं सारं गृह्णाति सज्जनः।
यथाश्रुतं यथारुच्यं शोच्यानां हि कृतिर्मता॥

वैदिक सम्प्रदायके महाभारतादि प्राचीन ग्रन्थोंके अनुसार यह बात अच्छी तरह सिद्ध कर चुके हैं कि—दिगम्बर धर्म श्वेताम्बर धर्मसे प्राचीन है और दिगम्बरों हीं में से इसकी संसारमें नवीन रूपसे अव-तारणा हुई है। वह केवल अपनी सामर्थ्यके हीन होनेसे। क्योंकि यदि उनकी सात्तिका ह्रास न होता तो न वे शास्त्र विहित जिनकल्पका अना-दर करते और न उन्हें अपने नवीन मतके चलानेकी जरूरत पड़ती।

कदाचित्कहो कि—यदि, जिनकल्पके तुम बड़े श्रद्धानी हो और उसे ही प्रधान समझते हो तो आज तुम लोगोंमें यह हालत है कि—एक साधु तक ऐसा नहीं देखा जाता जो जिनकल्पका नमूना हो? और हम लोगोंमें साधु तो दखनेमें आते है। क्या जिन भगवानका यह कहना कि—पञ्चम कालके अन्त पयर्न्त साधुओंका सद्भाव रहेगा व्यर्थ ही चला जायगा?

इसके उत्तरमें विशेष नहीं लिखना चाहते। किन्तु इतनाही कहना उचित समझते हैं कि-जो बात जिन भगवानकी ध्वनिसे निकली है वह वास्तवमें सत्य है और वैसा ही वर्त्तमानमें दिखाई भी दे रहा है। जिन भगवानने जो यह कहा है कि पञ्चमकालके अन्त पर्यन्त साधुओंका सद्भाव रहेगा परन्तु इसके साथ २ यह भी तो कह दिया है कि बहुत ही विरलतासे। तो यदि केवल इस देशमें वर्त्तमान समयमें उनके न भी होनेसे यह विश्वास तो नहीं किया जा सकता कि मुनियोंका सर्वथा अभाव हो? दूसरे—तुम लोगोंमें शासन विरुद्ध वेषके धारक यदि बहुत भी साधु मिल जावें तो उससे हमें लाभ क्या? अरे! आज इस देशमें हंस सर्वथा नहीं देखे जाते तो क्या विश्वास भी यही कर लिया जाय कि हंस होता ही नहीं है? विचारशील इसे कभी स्वीकार नहीं करेंगे। दूसरे—

ध्यातो गरुड़बोधेन न हि हन्ति विषं बकः।

बगलेका गरुड़ रूपमें कोई कितना भी ध्यान क्यों न करे परन्तु वह कभी विषको दूर नहीं कर सकता। तो उसी तरह केवल ऐसे वैसे साधुओंका सद्भाव होने ही से यह नहीं कहा जा सकता कि साधुओंके अभावकी पूर्त्ति हो जायगी? वैसे तो आज केवल भारतवर्षमें ही बावन लाख साधु हैं। परन्तु उनसे उपयोग क्या सधेगा?

हां! एक बात और श्वेताम्बर लोग कहते हैं जिससे वे अपने प्राचीन होनेका दावा रखते हैं। वह यह है कि—हम लोगोंमें अभी-तक खास गणधरोंके बनाये हुये अङ्गशास्त्र हैं और तुम लोगोंमें नहीं है। इससे भी हम प्राचीन सिद्ध होते हैं। परन्तु यह प्रमाण भी सङ्गत नहीं है। इसमें हमें बाधा यह देना है कि—यदि तुम खास गणधरों

के शास्त्र अभीतक अपनेमें विद्यमान बताते हो तो कोई हर्ज नहीं। हम तो यही चाहते हैं कि—किसी तरह वस्तुका निश्चय होजाय। परन्तु साथ ही इतनी बातें और सिद्ध करना होंगी? यदि वे शास्त्र खास गणधरोंके बनाये हुये हैं तो जिस २ अङ्गकी तुम्हारे ही शास्त्रों में जितनी २ संख्या कही है उतनीकी विधि ठीक २ मिला दो? यदि कहोगे कि—कलियुगमें बहुतसा भाग विच्छेद होगया है। अस्तु, यही सही, परन्तु उन शास्त्रोंके प्रकरण देखनेसे तो यह नहीं जाना जाता कि यहांका भाग खण्डित होगया है वह तो आदिसे लेकर अन्त पर्यन्त विल्कुल ससम्बद्ध मालूम पड़ता है फिर यह कैसे माना जाय कि इसका भाग नष्ट होचुका है? और न इतनी पदोंकी संख्या ही मिलती हैं जितनी शास्त्रोंमें लिखी है। फिर भी कदाचित्‌कहो कि-पद तो हम व्याकरणके नियमानुसार सुबन्त और तिङन्तको मानेंगे। खैर! यही सही, परन्तु ऐसा मानने पर तो वह संख्या शास्त्रके कथनको भी बाध्ति कर देगी? फिर उसका निर्वाह कैसे होगा? फिर भी यदि कहो कि–ये जो अङ्ग शास्त्र हैं वे गणधरोंके कथनानुसार महार्षियोंके द्वारा बनाये गये हैं। यदि यही ठीक है तो महार्षियोंने उनके रचयिताओंमें अपना नाम न रख कर गणधरोंका नाम क्यों रक्खा? क्या उन्हें किसी तरहकी विभीपिका थी? जो उन्होंने बड़ोंके नामसे अपने बनाये हुये ग्रन्थ प्रकाशित किये। जाति पर इसका कैसा प्रभाव पड़ेगा? उन्होंने अपने दूसरे महाव्रतका उल्लंघन करना क्यों उत्तम समझा? दूसरे—गणधरोंकी जैसी गंभीर बाणी होती है वैसी इनकी क्यों नहीं? जैसे ऋपियोंके ग्रन्थोंकी भाषा है वैसी ही इनकी भी है। इत्यादि कई हेतुओंसे ये अङ्गादि शास्त्र खास गणधरोंके द्वारा विहित प्रतीत नहीं होते। यदि सिद्ध कर सकते हो तो करो! उपादेय होगा तो सभी स्वीकार करेंगे।

दिगम्बरोंका तो इस विषयमें सिद्धान्त है कि—अङ्ग पूर्वादि शास्त्रोंका लिखा जाना ही जब नितान्त असम्भव है तो उनका होना तो कहांतक सम्भव है इसका जरा अनुभव करना कठिन है। परन्तु अभी जितने शास्त्र हैं वे सब परम्पराके अनुसार अङ्गशास्त्रके अंश ले २

कर बने हैं। उनके बनाने वाले गणधर न होकर आचार्य लोग हैं। और यही कारण है कि--उन्होंने सब ग्रन्थ अपने ही नामसे प्रसिद्ध किये हैं। यह युक्ति भी श्वेताम्बर मतके प्राचीन सिद्ध करनेमें असमर्थ है तो अभी ऐसा कोई प्रबल प्रमाण नहीं है जिससे श्वेताम्बर मत दिगम्बर मतसे पहलेका सिद्ध होजाय ? और दिगम्बर मत पहलेका है यह बात वैदिक सम्प्रदायके ग्रन्थोंके अनुसार हम पहले ही सिद्ध कर आये हैं। इसके अलावा दिगम्बरोंके प्राचीन सिद्ध होनेमें यह भी हेतु देखा जाता है कि—

उनके कितने आचार्य ऐसे हुये हैं जो उनका अस्तित्व विक्रम महाराजकी पहली ही शताब्दिमें सिद्ध होता है। देखिये तो—

कुन्दकुन्दाचार्य विक्रम सं. ४९ में हुये हैं। उन्होंने पञ्चास्तिकायादि कितने ही ग्रन्थ निर्माण किये हैं। समन्तभद्रस्वामी वि० स० १२५ में हुये हैं इनके बनाये हुये गन्धहस्तिमहाभाष्य, रत्नकरण्ड, आप्तपरीक्षादि कितने ग्रन्थ बनाये हुये हैं। बनारसका शिवकोटि राजा भी उन्हींके उपदेशसे जैनी हुआ था। उसने भी भगवतीआराधना प्रभृति कई ग्रन्थ निर्माण किये हैं। इनके सिवाय और भी कितने महार्षि दिगम्बर सम्प्रदायमें विक्रमकी पहली शताब्दिमें हुये हैं। इसलिये श्वेताम्बरोंका–दिगम्बर मतकी उत्पत्ति वि० सं० १३८ में कहना सर्वथा बाधित सिद्ध होता है। जब किसी तरह दिगम्बर मत श्वेताम्बर मतके पीछे निकला सिद्ध नहीं होता तो उनकी कथा--कल्पना कहां तक ठीक है ? इसकी परीक्षाका भार हम अपने पाठकोंके ऊपर छोड़ते हैं और प्रार्थना करते हैं कि वे निष्पक्ष दृष्टिसे दोनों मतके ऊपर विचार करें।

यद्यपि हमारी यह इच्छा थी कि–ऊपर लिखे हुये आचार्योंके बाबत यह सविस्तर सिद्ध करें कि ये सब विक्रमकी पहली शताब्दिमें हुये हैं। परन्तु प्रस्तावना इच्छासे अत्यधिक बढ़ गई है। इसलिये पाठकोंकी अरुचि न हो सो यहीं पर विराम लेकर आगेके लिये आशा दिलाते हैं कि हम श्वेताम्बर तथा दिगम्बरोंके सम्बन्धमें एक स्वतंत्र ग्रन्थ लिखने वाले हैं उसीमें यह बात भी अच्छी तरह

सिद्ध करेंगे। पाठक थोड़े समयके लिये हमें अपनी क्षमाका भाजन बनावें।

हमने यह प्रस्तावना ठीक२ निर्णयके अभिप्रायसे लिखी है। हमारी यह इच्छा नहीं है कि हम किसीके दिलको दुःखावें। परन्तु सत्य झूंठके निर्णयकी परीक्षा करनेका अवश्य अनुरोध करेंगे। और इसी आशयसे हमने लेखनी उठाई है। यदि कोई महाशय इसका सङ्गत उत्तर देंगे तो उस पर अवश्य विचार किया जायगा। बस इतना कह कर हम अपनी प्रस्तावना समाप्त करते हैं और साथही--

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः॥

इस नीतिके अनुसार क्षमाकी प्रार्थना करते हैं। क्योंकि--

न सर्वः सर्वं जानाति

इसलिये भूल होना छद्मस्थोंके लिये साधारण बात है। बुद्धिमानोंको उस पर खयाल न करके प्रयोजन पर दृष्टि देनी चाहिये।

भद्रबाहुचरित्रकी हमें२ प्रतियें मिली हैं परंतु वे दोनों बहुधा अशुद्ध हैं। इसलिये संस्कृत पाठके संशोधनमें हम कहां तक सफल मनोरथ हुये हैं इसे पाठकही विचारें। तब भी बहुत ही अशुद्धियोंके रहजानेकी संभावना है। उन्हें पुनरावृत्तिमें सुधारनेका उपाय करेंगे। हिन्दी अनुवादका यह हमारा दूसरा ग्रन्थ है। अनुवाद जहां तक होसका सरल भाषामें करनेका उपाय किया है पाठकोंको यह कहां तक रुचि कर होगा इसका हमें सन्देह है। क्योंकि हमारी भाषा वैसी नहीं है जो पाठकोंके दिलको लुभाले। अस्तु, तौ भी मूल ग्रन्थका तात्पर्य तो समझमें आ ही जावैगा। अभी इतने ही में सन्तोष करते हैं।

ता० १७।२।११ }
काशी }

जातिकादास--
उदयलाल जैन
काशलीवाल।

प्रस्तावनाका शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
२	८	सत्युपयेस्य	सत्युपेयस्य
६	१२	बाह्र	बारह
७	९	लिय	लिये
७	२६	दुभिक्ष	दुर्भिक्ष
८	२८	जिनेचन्द्र	जिनचन्द्र
१४	१७	१३९	१३६

अनुवादका शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	शुद्धि	शुद्धि
६	९	लक्षमी	लक्ष्मी
,,	१२	पुड्र्वर्द्धन	पुण्ड्र्वर्द्धन
९	१०	विचार	विचारे
,,	१७	चरणामें	चरणोंमें
,,	४	लिये हैं	लिया है
१०	३	समस्त	समस्त
११	८	विता	वितात
१२	१२	द्वितिया	द्वितीया
१४	८	शलि	शील
१८	१२	आनदिन्त	आनन्दित
२४	१	स्वरूपका	पक्षस्वरूपको

पृष्ठ		पंक्ति		अशुद्धिः		शुद्धिः
२९	...	२	...	चन्द्रलमण्डल	...	चन्द्रमण्डल
३७	...	१०	...	लुटाकर	...	लुटकर
१२	...	१२	...	द्वितिया	...	द्वितीया
५०	...	१३	...	निन्तर	...	निरन्तर
५०	...	१६	...	इलंघन	...	उल्लङ्घन
५४	...	१४	...	भय	...	भयसे
५६	...	३	...	नग्र	...	नग्न
५७	...	११	...	दशमें	...	देशोंमें
६१	...	१०	...	गुरू	...	गुरु
६४	...	५	...	पात्माओंने	...	पापात्माओंने
६५	...	१	...	कहते हुआ	...	कहता हुआ
६८	...	१	...	रूपशौभाग्य	...	रूपसौभाग्य
६९	...	१	...	उज्ययिनी	...	उजयिनी
७०	...	२	...	नग्र	...	नग्न
७१	...	३	...	मंसगमुनि	...	ससङ्गमुनि
७२	...	९	...	हाजानेसे	...	होजानेसे
७३	...	६	...	खङ्ग	...	खड्ग
७५	...	३	...	आर	...	और
,,	...	११	...	आहार्की	...	आहारकी
७७	...	३	...	होसती ?	...	होसकती ?
,,	...	६	...	स्त्रिये	...	स्त्रिये
,,	...	१३	...	संयय	...	संयम
७८	...	१	...	नहीं मानी सकती,		नहीं मानी जा सकती
७९	...	३	...	परीग्रही	...	परिग्रही
,,	...	१३	...	अन्तरग	...	अन्तरङ्ग
८०	...	८	...	संम्यक्त्व	...	सम्यक्त्व
८४	...	१	...	सम्बन्धि	...	सम्बन्धी
८८	...	५	...	विरद्ध	...	विरुद्ध
८९	...	५	...	गुरुपदेश	...	गुरूपदेश
९१	...	२	...	बुद्धिमानो	...	बुद्धिमानों

पृष्ठ		पंक्ति		अशुद्धिः		शुद्धिः
९८	...	१३	...	सङ्कनल	...	सङ्कलन
९५	...	२	...	वेश्यवंश	...	वैश्यवंश
”	...	१०	...	माताका	...	माताका नाम

मूलग्रन्थस्य शुद्धिपत्रम्

पृष्ठे		पङ्क्तौ		अशुद्धिः		शुद्धिः
२	...	६	...	परमेष्ठि	...	परमेष्ठि
५	...	७	...	निर्गतम	...	निर्गतम्
१३	...	६	...	विश्वासः	...	विश्वाशः
१५	...	७	...	विष्ठरमू	...	विष्टरम्
१६	...	५	...	ऽयापनाय	...	ऽऽयापनाय
२०	...	६	...	ततो	...	तपो
३२	...	४	...	बहवः	...	बहवो
३३	...	६	...	क्षरि	...	क्षीर
३८	...	४	...	दद्माकरो	...	पद्माकरो
४१	...	७	...	राजिताः	...	राजितः
४३	...	३	...	हुर्वी	...	उर्वी
४७	...	१	...	यदृष्टं	...	यद्दृष्टं
”	...	४	...	वन्दे	...	ववन्दे
४८	...	७	...	त्वरित	...	त्वरितं
४९	...	२	...	दृम	...	दृङ्म
५१	...	१	...	जानन्तेषु	...	जनान्तेषु
”	...	३	...	दरिद्रभ्यो	...	दरिद्रेभ्यो
”	...	६	...	मात्राङ्कः	...	मात्राङ्काः
५४	...	१	...	रका	...	रंकाः

पृष्ठे	पङ्क्तौ	अशुद्धिः	शुद्धिः
५५	३	तच्छुत्वा	तच्छ्रुत्वा
५६	१	मात्रं	पात्रं
६५	१	तथ	तथा
६८	३	प्राथेना	प्रार्थ
७१	२	व्यरारिचत्	व्यरीरचत्
७३	३	मृतेः	मृतैः
७७	७	तार्थकर्तणां	तीर्थकर्तॄणां
८०	३	स्वङ्ग	स्वङ्ग
८४	५	विरे	वीरे
८५	५	विरुद्वैः	विरुद्धैः
८६	१	जातं	जातं
८९	५	कोचित्कोचित्	केचित्केचित्
९२	१	स्याद्वा	स्याद्वादा